अंतिम दशक के दात आत्मकथाओं में अभिव्यक्त दात संघर्ष

डां. दीपिका एस
हिन्दी विभाग
विजया कांलेज मुकि

दात साहित्य में हिन्दुओं की वर्ण व्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक विषमता,भेद-भाव, अपमान-जनक व्यवहार,उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध प्रतिकार की रोष पूर्ण अभिव्यक्ति है, जो रंग वर्णनस्त जाति धर्म, और ाांग में असमानता के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रतिकार देता है। दात साहित्य समाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, राजनीतिक क्षेत्र में समता का समर्थक है । और स्वतंत्रता, लोकतंत्र, न्याय, बंधुता, और सर्वधर्म सद्भाव का पोषक । यह अन्धविश्वास अवैज्ञानिक बातों का विरोधी है । आत्मकथा में आत्म तत्व सवौपरि होता है । इस विधा की तो प्रतिज्ञा ही है कि ''सच-सच के सिवा कुछ भी नहीं'' जिसमें सच कहने का माद्दा जितना ज्यादा होता है उसकी आत्मकथा उतनी ही श्रेष्ठ होती है । सत्य के संबध ने प्रसाद जी ने बडी महत्वपूर्ण काव्यमय टिप्पणी की है ''सत्य यह एक शब्द तू कितना जटिल हुआ है । मेघ के क्रीडा पिंजर का पाला हुआ है''

यह निर्विवाद रुप से कहा जा सकता है कि किसी भी दात द्वाराििखी आत्मकथा सिर्फ अपनी जीवनगाथा न होकर उसके पूरे समाज के जीवन की जीवंत तस्वीर होती है । उसके जीवन का दुख-दर्द अपमान,और उपेक्षा को भी स्वर देता है । चतुवर्ण व्यवस्था के कारण से दात शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकें ।
उन्हें सदैव दबाकर रखा गया । वर्ण जाति व्यवस्था की ही क्रूरता का परिणाम है कि तीन हज़ार से अधिक समय तक अछूत इस व्यवस्था में उत्पीड़न के शिकार हुए, वे अपनी मुक्ति का मार्ग ढूँढने में कठिनाई महसूस किये । इस देश के दात को उनका जन्म ही एक संघर्ष और समस्या लगती है । दातों का पुरा जीवन ही संघर्ष से भरा हुआ है । रोजमार की समस्याएँ तो उनके माथे पर चिपकी, हर एक मूल सुविधा से वंचित होकर तडपते रहे और संघर्ष करते रहे ।

आवास और निवास केिए संघर्ष : निवास केिए संघर्ष सामान्य रुप से सभी हिन्दी दात आत्मकथा में देख सकते है एक तो गाँव के बाहर छोटे-छोटे घास से बने झोपडी के घर में दातों को रहना पडता था । तंग गायाँ, खराब, रास्ते, सुअर, कुत्ते, बिियाँ, चूहे, गटरीयों से घर में घूमते रहता है । उसी में दात परिवारों को रहना पडता । निवास के बारे में ओमप्रकाश वाल्मीकि भी अपने आत्मकथा 'जूठन' मेंखते हैं कि ''जोहडी के किनारे पर चूहडों के मकान थे । जिनके पीछे गाँवभर की औरते, जवान लडकियाँ बडी-बूढी यहाँ तक नवेली दुल्हने भी इसी डब्बोवाली के किनारे खुले में टट्टी फरागत केिए बैठ जाती थी । रात के अंधेरे में ही नहीं दिन के उजाले में भी पर्दों में रहनेवाली त्यागी महिलाएँ घूँघटे काढे दुशाले ओढे, इस सार्वजानिक खुले शौचालय में निवृत्ति पाती थी । तमाम शर्म -ाहाज छोडकर वे डब्बोवाली के किनारे गोपनीय जिस्म उघाड़कर बैठ जाती थी । इसी जगह गाँव भर की लडाई झगडे गोलमेज कांफ्रेस की शकल में चर्चित होते थे । चारों तरफ गंदगी भरी होती थी । ऐसी दुर्गंध की मिनट भर में साँस घुट जाए । तंग गायों में घूमते सुअर नंग - धडंग बच्चे, कुत्ते, रोजमार के झगडे '' । बारिश के दिनों में दात बस्तियों में दुर्गंध होती है । झोपडियों में घरों में पानी घुसता '' साहित्य में नर्क की सिर्फ कल्पना है , हमारेिए बरसात के दिन किसी नरकीय जीवन से कम नहीं थे । हमने इसे साक्षार रुप को जीते भोगा है । ग्राम्य जीवन की यह दारुणा व्यथा हिन्दी के महाकवियों को छू भी नहीं सकी । कितनी बीभत्स सच्चाई है यह '' ।

शिक्षा केिए संघर्ष :
डां बाबा साहेब अंबेडकर का विश्वास था कि दातों के उद्धार का एक मात्र मार्ग शिक्षा प्राप्ति है । शिक्षा के सहारे से दात अवनति के गर्त से ऊपर उठ सकते है । और दातों की दयनीय अवस्था का एकमात्र कारण हैं कि शिक्षा का अभाव । ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा 'जूठन' में शिक्षा केिए किस तरह से संघर्ष किये है उसे अभिव्यक्त करते हुएखते हैं कि त्यागियों के बच्चे 'चूहड' कहकर चिढाते थे । ''हेडमास्टर कालीराम ओमप्रकाश को बुलाकार पूछा क्या नाम है बे तेरा ? चूहडे का है ? हेडमास्टर का दूसरा सवाल ? ठीक है वह जो सामने शीशम का पेड खडा है , उस पर चढ जा और टहनियाँ तोडके झाडू बणा ले । पत्तों वाली झाडू बणाना । और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसा सीसा । तेरा तो यो खानदानी काम हैं । जा फटाफट लग जा काम पे ।'' रसायन शास्त्र का शिक्षक इसे इटंर के प्रैक्टिकल और मौखिक परिक्षा में जानबूझकर फैल कर देता है ,ये बात ओमप्रकाश को आज भी याद हैं क्यों कि पढने केिए घर में तंगी रहती हैं पढने के चाह में गाय की खाल बेचकर सुआर बेचें हुए पैसे से आते ऊपर से शिक्षक जानबूझकर दात बच्चों के भविष्य से ही खेलते । लेकिन इतना सब कुछ करने के बावजूद भी आत्मकथाकारों ने पढ़ने की चाह नहीं छोडी ।
'तिरस्कृत' में सूरजपाल चौहान ने अपने मन के कडवी बात को व्यक्त किया है जैसे संस्कृत विषय पढ़ाने वाले अध्यापक वेदपाल शर्मा मुझे समय समय पर जाति का ओछापन याद दिलाते रहे । मैं तडप उठता था उस द्रोणाचार्य की बात सुनकर । एक दिन अपने साथी अध्यापक से मेरी और संकेत कर उसने कहा ''यदि देश के सारे चूहडे - चमार पढ़ाख गए तो गली मोहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा ?'' इस तरह से दातों को कक्षा में बैठने काए नहीं छोडते क्यों कि किसी तरह उन्हें स्कूल से भगाना था ।

जाति के नाम पर संघर्ष :
भारतीय समाज व्यवस्था में 'जाति' नामक शब्द या व्यवस्था काफी महत्वपूर्ण है । यहाँ अर्थात हिंदू समाज में व्यक्ति की पहचान गुण, योग्यता कर्म, के आधार पर न होकर उसके जाति से होती है । यहाँ जातियाँ उपजातियों में विभाजित है । फिर कुल गोत्र की रचना है जाति के आधार पर ही छोटा-बडा ऊँच-नीच तथा स्पृश्य-अस्पृश्य का भेद पैदा किया गया है । जाति का दंश सबसे अधिक दातों पर ही होता है । जाति के कारण उनके नसीब में नरकिय जीवन आता है । जाति का सबसे अधिक दुख दातों को ही भोगना पडता है । भोगा हुआ नरकीय जीवन जब वेिखने लगते है तब वह आत्मकथा बनती है । हिन्दी साहित्य के दात आत्मकथाओं में चित्रित जाति के कारण मिले

अनुभवों को आत्मकथाकार ने शब्दबद्द किया है वह इस प्रकार है। मोहनदास नैमिशराय 'अपने-अपने पिंजरे' में जाति के कारण जो भोगा हुआ सत्य है उसके बारे मेंखते है कि ''जाति जैसे आदमी के कंधो पर चढकर यात्रा करती है। हम जहाँ भी जाते, हमारी जात भी जाति। जाति कभी हमसे पीछे नहीं रहती। हमारी बस्ती का नाम भी चमार गेट या चमार दरवाज़ था।"उनका कहना हैं कि अनपढ़ हो या पढेिखे या एंकात हो या सार्वजनिक स्थल जब लोग एकत्र आते तब पहले चेहरे पर प्रश्न चिन्ह लेकर ही उधर इधर देखते पूँछेगे कौन जात के हो ? अर्थात अनुभव यह हैं कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के पास आयेगा तो मानवता अर्थात मनुष्य के नाते नहीं देखेगें वह जातियता के नजर से ही देखा जाता है। हिन्दी की अत्यंत चर्चित दात आत्मकथा 'जूठन' में जाति के कारण हुए अनुभव तो अनेक है पर जातियता से तंग आकर लेखकाखता है कि ''मन में एक उबाल सा उठता था जो कहना चाहता था, मैं हिन्दू भी तो नहीं हूँ यदि हिंदू होता तो हिंदू मुझ से इतनी घृण , इतना भेदभाव क्यों करते ? बात बात पर जातिय बोध की हीनता से मुझे क्यों भरते ? मन में यह भी आता था कि अच्छा इन्सान बनने के किले जरुरी क्यों है कि वह हिन्दू ही हो हिन्दू की क्रूरता बचपन से देखी है। जातीय श्रेष्ठताभाव अभिमान बनकर कमजोर को ही क्यों मारता है ? क्यों दातों के प्रति हिंदू इतना क्रूर है।" और आगे स्कूल में हेडमस्टर जाति के नाम लेकर किस तरह अपमान किये है कहते हुए आगे बताते हैं कि ''अबे ओ चूहडे के मादरचोद कहाँ घुस गया अपनी माँ " पिताजी जाकर पूछने पर उत्तर मिला कि ''क्या करोगे स्कूल भेजके कौवा बी कबी हंस बण सके,तुम अनपढ गाँवर लोगो क्या जाणो,विध्या ऐसे हासिल ना होती अरे चूहडे के जाकत कू झाडू लगाने कू कह दिया तो कोंण सा जुल्म हो गया या फिर झाडू ही लगवाई हैम, द्रोणाचार्य की तरियों गुरु-दक्षिण में अँगूठ तो नहीं माँगा "। छोटे बच्चे भी स्कूल में ''त्यागियों के बच्चे 'चूहडे का कहकर चिढाते थे।" इस तरह से जहाँ पर भी जाते वह पर उनके जाति के बारे में उन्हें याद दिलाया जाता था और उनके जन्म सिद्ध अधिकार को भी।

'तिरस्कृत' आत्मकथा में लेखक सवर्णों की मानसिकता का परिचय देते हुए कहते हैं कि '' साले चूहडे - चमार पढ़ाखकर आगे बढते जा रहे है। राम चरण को देखो रक्षामंत्री के पद पर पहँच गया है।" सदियों से दात हर जगह सवर्णों के शिकार बनते आए है। यह इतिहास है।

रोटी केिए संधर्ष :

दातों के जीवन में जो भी समस्याएँ आती है अधिकतर आर्थिक परिस्थिति से संबधित है। जिन्हें सभी अधिकार से वचिंत किया गया है उन्हें कहाँ से आर्थिक रास्ते निर्माण होंगे ? एक तो प्राकृतिक और मानवीय दोनों अधिकारों से दातों को पंरपरा से वंचित रखा गया है। उन्हें जमीन जायदाद आभूषण - अलंकारों व्यापार शिक्षा, नौकरी आदि से परंपरा या नियम अथवा शास्त्रों का धाक दिखाकर धमकाया जाता है। दात आशिक्षित अंधश्रद्दालू होने के कारण जो नसिब में है वह भगवान ने दिया है, इसे तोड़ना पाप है यह मानकर चुपचाप जिंदगी जीते रहे। यूँ कहें तो गलत नहीं होगा कि दातों को मानवीय अधिकारों से दूर रखा था। इन्सान जो कुछ करता हैं रोजी रोटी केिए ही करता है ,सूरजपाल चौहान की माँ मुहल्लों की सफाई का कार्य करती थी इस काम के बदले में बसीठों के घर से एक एक रोटी ही मिलती थी। अगर सूरजपाल के माँ मोहल्ले के पाखान साफ करती है तो बदले में मटर के आटे की रोटी देते। काम के आधार पर इन्हें रोटी दिया जाता था। पेट के भूख मिटाने केिए क्या-क्या करना पडा है सूरजपाल चौहान ने अपने आत्मकथा 'तिरस्कृत' में अपने अनुभव को व्यक्त किये है जैसे ''गाँव के राधे लोधे की लड़की की विवाह में सूरजपाल और माँ जूठन उठाने केिए गये, जाते समय माँ एक डंडा भी ले ली लेकिन उस वक्त सूरजापाल सोच रहे थे कि डाि्या में पूरियाँ, मटकी में दही और बालटी में तरकरी भर लेंगे माँ को डंडा क्यों चाहिए ? पगंत में से एक आदमी खान खा चुका था। वह अपनी पत्तल उठाए हमारी और बढ़ा चला आ रहा था। माँ टोकरी व मटकीिए तैयार बैठी थी ,जैसी ही उस आदमी ने अपनी जूठी पत्तल और दही बूरे वाला भोलुआ डाया के पास रखा कि पलक झपकते एक कुत्ता पत्तल से पूरी के टुकडे चलता बना। माँ भोलुए में से बूरे मिली झूठी दही मटकी में उंगली से पोंछ पोंछ कर डाल रही थी। जब माँ का ध्यान पत्तल पर मुँह मारते कुत्ते पर गया तो वह आँखे दिखाते हुए मुझसे बोली ''कढी खाए कुत्त आँखिन के सामने से पूरी उठाए कै लै गयौ और तू देखत रहेयौ तौपे डंडा नाय मारौ गयौ"।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भी दो वक्त की रोटी केिए किस तरह संधर्ष और अपमान को सहे है, अपने आत्मकथा 'जूठन' में व्यक्त किये है ''सुखदेव सिंह त्यागी की लडकी की शादी थी। उनके यहाँ ओमप्रकाश वाल्मीकि की माँ काम करती थी शादी से दस बारह दिन पहले से माँ पितजी ने सुखदेव सिंह के घर आँगन से लेकर बाहर तक के अनेक काम किये थे। शादी में जब सब लोगो खाना खाकर चले गए तो मेरी माँ ने सुखदेव सिंह त्यागी को दालान से बाहर आते देखकर कहा ''चौधरी जी ईब तो सब खाणा खा के चले गए म्हारे जाकतों कू भी एक पत्तल पर घर के कुछ दे दो। वो बी तो इस दिन का इंतजार कर रे ते। सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा टोकरा भर तो जूठन ले जा री है ऊपर से जाकतों केिए खाणा माँग री है ? अपणी औकात में रह चूहडी उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।"ओमप्रकश की माँ ने अपने बच्चों केिए एक वक्त की भूख मिटाने केिए एक पत्तल को भिख की तरह माँगी लेकिन उस सवर्ण ने जाति को लेकर अपमान करके टोकरी तरफ इशारा किया।

पानी केिए संघर्ष :

पंजभूतों में पानी भी एक है ,घर आये मेहमान को देने केिए कुछ नहीं है तो पानी से स्वागत करते है क्यों कि पानी तो मुफ्त में मिलता है ,लेकिन दातों को तो पिने का पानी केिए भी संघर्ष करना पडता। सवर्णों के कुएँ को छूना मना था बुनियादी जरुरतों से वचिंत होकर किस रीति से पशुतुल्य जिंदगी बीता रहे है थे और इस तरह से तडपते वक्त भी सवर्णों ने पिने केिए पानी नहीं दे रहे थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने आत्मकथा 'जूठन' में अपने अनुभव को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि ''बरसात के दिन नरक से कम नहीं था गाि्यों में कीचड भर जाता। बस्ती में एक कुआ था चंदा इकट्ठा करके कुएँ को ठीक कराया गया था फिर भी गाि्यों को कीचड सना पानी जाकर कुएँ में मिल जाता और बरसाते के दिनों में कुएँ के पानी में लंबे लंबे कीड़े हो जाते थे ,फिर भी उस पानी को पीना मजबूरी थी क्यों कि तगाओं के कुएँ से पानी लेने का हमें अधिकार नहीं था "।

मोहनदास नैमिशराय अपने आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' में पानी की समस्याओं के बारे में बताते हुएखते हैं कि ''गाँव के दातों के हिस्से में एक कुआँ था उसी कुएँ के पानी को हमारेिए साफ किया जा रहा था, पता चला कि उसमें किसी ने रात में कुत्ते को मारकार डाल दिया था। गाँव वालों के हाथों में डोल थे रस्सियाँ थी। कुएँ का पानी गदला था "। फिर भी इन्हें उसी पानी से नहाना था क्यों कि गाँव में सिर्फ दातों केिए एक ही कुँआ हैं और उस पानी को भी बिगाड ने केिए उसमें टट्टी पेशाब और जानवार को मार कर डालते थे ,इस तरह करने के बावजूद भी दातों को उसी कुएँ के पानी पिना था क्यों कि उन्हें किसी हालत में जीना तो हैं। 'दोहरा अभिशाप'

आत्मकथा में कौसल्या बैसंत्री ने दात-दातों के बीच के जाति भेद का खुलकर अभिव्यक्त की है। सवर्ण दात को अपने कुएँ को छुने नहीं देते तो वे ''शाम और सुबह पाखाने में से ही जमादार लोग अपने घर केिए पीने और कपडा धोने केिए पानी ले जाते थे। उन्हें बस्ती के कुएँ और नल से पानी नहीं भरने देते थे।''

वस्त्र केिए संघर्ष :

दिन भर काम करने के बाद रुखी-सुखी रोटी साल में एक बार फटे हुए पुराने कपडे दिए जाते उसपर इनका रोप। स्त्रियों को लज्जा रक्षण केिए तार - तार हुए पुराने कपडे। सवर्ण आँखें उस तार तार कपडों से दिखता शरीर देखकर खुश होती रहती है। आज भी भारतीय गाँवों में दातों की स्थिति काफी सुधारी नहीं है। दातों के अर्थिक स्थिति ठीक न रहने के कारण वस्त्रों से काफी अपमान को सहना पडा है। जैसे ओमप्रकाश वाल्मीकि शब्दों में ''कभी कोई साफ सुथरा कपडा पहनकर यदि निकलें तो फाब्तियाँ सुननी पड़ती थी। ऐसी फब्तियाँ जो मुझे तीर की तरह भीतर तक उतर जाती थी। ऐसा हमेशा होता था। साफ सुथरे कपडे पहनकर कक्षा में जाओ तो साथ के लडके कहते '' अबे चूहडे का ,नए कपडे पहनकर आया है '' मैले-पुराने कपडे पहनकर स्कूल जाओं तो कहते अबे चूहडे के,दूर हट बदबू आ रही है ''। ओमप्रकाश जब देहरादून में कॉलेज जाने लगे तो पहने केिए लायक कपडे भी नहीं थे। गाँव में तो गंदी बिना इस्तरी की हुई कमीज और पट्टे के पाजामें से ही काम चलाते थे जसबीर ने अपने पुराने पैंट को ओमप्रकाश केिए दिया था लेकिन लेखक के नाप से बहुत ढीली थी। उसी ही पहनकर कॉलेज गये तो कक्षा में सभी ने मज़ाक उडाया और एक ने ''पैंट खीचते हुए कहा किस टेलर से सिलाई है ? हमें भी उसका पता दे दो '' दूसरे लड़के जोर-जोर से हँस रहे थे। मैं उनसे बचकर निकलना चाहता था,लेकिन वे जाने ही नहीं दे रहे थे। कभी मेरी पैंट पकड़कर खींचते तो कभी कमीज। मैंने बेहद दयनीय लहजे में कहा था ''फट जागी..इसे छोड दो मेरे देहाती लहजे पर वे जोर से हँसे थे''।

मन्दिर प्रवेश केिए संघर्ष:

हिन्दू धर्म में कहा जाता हैं कि इन्सान को तो भगवान ने बनाया हैं , तो हम सब उस ईश्वार के संतान होने के नाते उस श्रृष्टिकर्त पर समान आधिकर है। लेकिन यहां जाति नामक भूत ने कुछ लोगो से इस अधिकार को छिनाया है। यानि दातों को मंदिर के अंदर जाना मना था। दातों को जिस प्रकार हर वस्तु से वंचित किया गया उसी प्रकार मन्दिर से बहार रखा गया। जो भी मन्नते माँगनी है और पुरी करनी है बहार से। इस बात को कौसल्या बैंसत्री अपने आत्मकथा ' दोहरा अभिशाप ' में व्यक्त की है ''आजी और माँ ने शिवजी भगवान से मंदिर के बाहर खड़े होकर प्रार्थना की और भगवान से मन्नत माँगी कि अगर मैं दस वर्ष की हो जाऊँगी और मेरे बाद जो बच्चे पैदा होंगे वे जीवित और स्वस्थ रहेंगे तो वह शिवजी के मंदिर में जाकर बकरे की बा देगी और मेरे वजन के बराबर चावल और गुड चढाएगी। माँ और आजी ने मन्दिर के बाहर से लंबी आयु केिए प्रार्थना की थी क्यों कि अछूतों को मंदिर में जाने की मनाही थी''।

निष्कर्ष:

दातों का जीवन मूलत: संघर्षपूर्ण रहा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक यह प्रक्रिया चलती रही है। इसका मूल कारण जाति भेद पद्दति। सदियों से भारतीय समाज ने एक अंतर बनाये रखा है। यह अंतर मूलत: असमानता की नींव बनी हुई है। यही असमानता जाति, धर्म, अक्षर, अभिव्यक्ति, संस्कृति, आदि उसी के परिणामस्वरुप हमारी सामाजिक व्यवस्था अव्यवस्था का बवंडर बनी हुई है। इसी अंतर के कारण दातों को हर मूलभूत सौकर्य से वंचित किया गया और दात जीवनभर इस अधिकार केिए लड़ते रहे।

सहायक ग्रंन्थ

१. अपने अपने पिंजरे : मोहनदास नैमिशराय
२. अपने अपने पिंजरे भाग - २ : मोहनदास नैमिशराय
३. जूठन : ओमप्राकाश वाल्मीकि
४. तिरस्कृत : सूरजपाल चौहान
५. दोहरा अभिशाप : कौशल्या बैसंत्री
६. दात साहित्य का समाजशास्त्र : डॉ विजय पाल
७. दात चेतना और स्त्री विमर्श : नामदेव